© UNIVERSAL RESEARCH REPORTS | REFEREED | PEER REVIEWED
ISSN : 2348 - 5612 | Volume : 04 , Issue : 13 | October – December 2017

गोविन्द मिश्र के कथा साहित्य में सांस्कृतिक चेतना: एक विवेचना

सुरेश कुमारी, शोध छात्रा
हिन्दी विभाग जम्मू विश्वविद्यालय

सार:

किसी देश, समाज या समुदाय के जनजीवन में व्याप्त गुणों एवं विशिष्टताओं के समग्र रूप का नाम ही संस्कृति है जो उनके व्यवहार, रहन-सहन, नृत्य, गायन, साहित्य एवं कला आदि में स्पष्टतः परिलक्षित होती है। संस्कृति जीवन की नियामक शक्ति है। वह जीवन की पवित्र आत्मा है, जिसका सजृन देश-काल और परिस्थिति के अनुसार समाज के क्रिया-व्यापार से ही सम्भव है। जीवन को संस्कारित करना इसका स्वभाव है। मूल्य रचना का सम्बन्ध भी इसी संस्कृति से है। संस्कृति के निर्माण में लोक की भूमिका, उसका श्रम, उसका जीवन केन्द्र होता है, व्यक्ति संस्कृति की धारा में शामिल होकर सुसंस्कृत हो जाता है और उस संस्कृति के निर्माण में अपना भी योगदान दे सकता है। संस्कृति का एक वर्गीय स्वरूप भी होता है, लेकिन तब हम विभिन्न संस्कृतियों के अन्तस्सम्बन्धों को स्वीकार नहीं कर पायेंगे, इसलिए कि आर्थिक सम्बन्धों की प्रक्रिया तो तेज होती है, लेकिन संस्कृति का निर्माण और संस्कृति का विनाश इतनी शीघ्रता से नहीं होता, इस अन्तराल में अन्य सांस्कृतिक परम्पराएँ भी उसमें जुड़ जाती हैं।

मुख्य शब्द: संस्कृति, देश-काल, परम्पराएँ, समुदाय आदि।

प्रस्तावना:

1965 से लगातार और उत्तरोत्तर स्तरीय लेखन के लिए प्रसिद्ध गोविन्द मिश्र जिनकी समकालीन हिन्दी कथा-साहित्य में अपनी अलग पहचान है - एक ऐसी उपस्थिति जो एक सुविख्यात साहित्यकार का बोध कराती है, जिसकी वरीयताओं में लेखन ही सर्वोपरि हैं, जिसकी चिन्ताएं समकालीन समाज से उठकर 'पृथ्वी पर मनुष्य' के रहने के सन्दर्भ तक जाती हैं और जिसका लेखन फलक 'लाल पीली ज़मीन' के यथार्थ, 'तुम्हारी रोशनी में' की कोमलता और काव्यात्मकता, 'धीर समीरे' की भारतीय परम्परा की खोज, 'पाँच आँगनों वाला घर' के इतिहास और अतीत के सन्दर्भ में आज के प्रश्नों की पड़ताल, 'धूल पौधों पर' में मध्यमवर्गीय नारी का आत्मसंघर्ष इन्हें एक साथ समेटे हुए है।

संस्कृति के बारे में कहा भी गया है कि मानव जाति की पूर्ण संतुष्टि मात्र भौतिक संसाधनों एवं परिस्थितिजन्य क्रियाकलापों में वांछित परिमार्जन करके ही संभव नहीं होती, क्योंकि तन के साथ मन और आत्मा भी तो है। भौतिक प्रगति से उनका क्या सरोकार, ऐसी स्थिति में अतृप्त रहना स्वाभाविक ही है। अतः इनकी तृप्ति व संतुष्टि के लिए मनुष्य स्वयं का जो सर्वांगीण विकास उन्नयन करता है। उसका समग्र रूप ही संस्कृति कहलाता है।

साहित्य समाज का अंग है, जो भाषा की प्रकृति के लिए विषय को स्वरूप प्रदान करता है। साहित्य का सरोकार केवल पुस्तकीय रचना न होकर भाषा एवं सभ्यता के साथ-साथ मानवीय विचारों की प्रवृति को वातावरण के साथ उचित रूप देना है। साहित्य में लेखक अपने मनोभावों को कुछ इस प्रकार से समायोजित करता है जिससे वह एक साहित्यिक अवधारणा बन सके। आम तौर पर भारतीय समाज में मातृसत्तात्मक संस्कृति को पितृसत्तात्मक मानकर सामाजिक हस्तांतरण का कार्य किया जाता है। यह कार्य वर्तमान भौतिकवाद की देन कहा जाये तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। वर्तमान समय में भौतिकवाद इस प्रकार से फैला है कि मानों वह सभ्यता और संस्कृति दोनों को ही विषैला कर देगा। विष के इस प्रभाव से साहित्य और वातावरण दोनों ही अपनी दशा यथावत कायम नहीं रख पाते हैं। उनमें भी कुछ परिवर्तन अवश्य होता है। भारतीय संस्कृति में अनेक प्रकार की विविधता के कारण साहित्य में भी अनेक प्रकार की विविधताएँ देखने को मिलती है। जैसे- भाषायी विविधता, भौगोलिक विविधता, सांस्कृतिक विविधता आदि। इन विविधताओं के कारण ही रचनात्मक प्रवृति एवं चिन्तन प्रवृति आदि में भी विविधताएं देखने को मिलती है, जो भारतीय समाज के साथ में साहित्य विघटन का भी एक मुख्य कारण बन जाता है।

भारतीय समाज में बालक की प्रथम पाठशाला उसका अपना परिवार माना जाता है। क्योंकि पारिवारिक विश्लेषण के आधार पर ही व्यक्ति यथार्थ को समझने का प्रयास करता है। पारिवारिक विसंगतियों के कारण ही बालकों में भी विसंगतियों उत्पन्न होती है। यही विसंगतियों परिवार, समाज और संस्कृति सभी को प्रभावित करती है। ये विसंगतियाँ जब एक लेखक के माध्यम से साहित्य में प्रविष्ट होती है तो साहित्य भी उसके प्रभाव से वंचित नहीं रह सकता है।

वर्तमान समय में भारतीय समाज में संयुक्त परिवारों के टूटने का एक और कारण है, वह है समयानुकूल परिवर्तन तथा भोग विलासिता का दौर समय के फेर में जब हम गहराई की ओर झाँकते हैं तो वहाँ हम आधुनिकता को पाते हैं। व्यक्ति अपने आधुनिकतावाद के इस दौर में परम्परावाद को पीछे छोड़कर आधुनिक

भौतिक संस्कृति की चमक पर कुछ इस प्रकार से समर्पित हो जाता है जिससे वह न तो वातावरण को समझ पाता है और न ही पारम्परिक शब्दावली को क्योंकि आज कोई भी व्यक्ति परम्परावादी भूमिका में रहना पसन्द नहीं करता। गोविन्द मिश्र ने अपने उपन्यास 'पाँच आँगनों वाला घर' में आधुनिकतावाद के इस प्रभाव को बखूबी से हमारे सामने उभारा है –

''सामूहिक संस्कृति वाले संयुक्त परिवार उपभोक्तावादी पश्चिमी संस्कृति के प्रभाव से आत्मकेंद्रित व्यक्ति निष्ठा में संकुचित होने लगे। मुंशी राधेलाल और माँ जोगेश्वरी द्वारा तिनका–तिनका जोड़कर बनाया गया 'पाँच आँगनों वाला घर' भी विभाजित हो गया। अनेक दीवारें उग आयीं। लबालब प्रेम से भरे तालाब जैसा यह मुहल्लेनुमा घर तो टुकड़ों में बँटा ही लोगों की भावनाओं में भी गहरी दरारें पड़ गईं। राजन और रम्मो का विवाह इस घर का अंतिम सामूहिक उत्सव था"।

प्राचीन भारतीय समाज एवं संस्कृति में परोपकार को मानवता का सर्वोतम पूण्य धर्म माना गया था। परन्तु आधुनिकतावाद के इस दौर में व्यक्ति की पूण्य के प्रति कोई अभिलाषा नजर नहीं आती। गोविन्द मिश्र ने अपने उपन्यास 'पाँच आँगनों वाला घर' में परोपकार के सम्बन्ध में अपने विचार इस इस प्रकार व्यक्त किए, जहाँ राधेलाल कहता है कि, ''अपने स्वार्थ से निकलकर हमें बड़ी बात से जुड़ना। आज के समय में देश के लिए मरने, खपने से बड़ी बात और कोई नहीं"।

इस कथन से राधेलाल की मानवीय परोपकार भावना अवश्य देखी जा सकती है। परन्तु उदासीनता के इस दौर में नयी पीढ़ी में यह बात बिल्कुल भी नजर नहीं आती। नई पीढ़ी धीरे–धीरे अपने परम्परावादी विचारधारा को अपने में समायोजित नहीं कर पा रही है या भूल रही है – ''मनुष्यों की तरह घर भी बीतते हैं, वे भी चलते हैं, समय के साथ सरकते हैं... भले ही धीरे–धीरे। कुछ समय बाद घर का कोई टुकड़ा कहीं–का–कहीं पहुँचा दिखता है, कहीं से टूटा कहीं जा मिला। घरों की शक्लें बदल जाती हैं...कभी–कभी इतनी कि पहचान में नहीं आतीं। हम घरों को अपनी हदों में घेरने को बेचैन रहते हैं पर उनकी स्वाभाविक धीमी चाल उस दिशा की और होती है जहाँ वे घेरों को तोड़, बाहर जमीन के खुले विस्तार में जा मिलें। इसलिए हर घर धीरे–धीरे खंडहर की तरफ सरकता होता है"।

आधुनिकता के इस युग में मध्यम वर्गीय मनुष्य साहित्य में स्वयं को खोजता नजर आता है। अपने संघर्ष, अपनी वेदना तथा अपनी समस्याओं से झुँझता मानव स्वयं को साहित्य में पाने की इच्छा जरूर रखता है। परन्तु

यह तलाश, तलाश ही रहती है। क्योंकि ऐसा माना जाता है कि मध्यमवर्गीय परिवार या मनुष्य उसी को अपनाता है, जहाँ उस पीढ़ी के जीवन मूल्य एवं सत्यता को व्यक्त किया गया हो।

''साहित्य जीवन का अलंकार नहीं बल्कि जीवन है और वह कलाकार के बल पर ही जीवन से रू-ब-रू होता है जिसे हम वर्तमान समय में जीते है, कलाकार उन्हें पुनः जीता है, सर्जन के क्षणों में तथा हम उस जीये गये क्षण को पाठक बनकर पढ़ते समय एक बार फिर उन घटनाओं से रूबरू होकर जीते है"।

गोविन्द मिश्रजी ने अपने कथा लेखन के माध्यम से हमें जीवन, जीवन मूल्य, सत्यता एवं साहित्य भावना से भलीभाँति अवगत करवाया है। आधुनिकता के इस दौर में आदमी एवं औरत सभी इनकी रचनाओं में एक ही साँचे में ढले हुए नजर आते हैं। उनका अपना कोई बजूद नहीं है, वह तो केवल वातावरण के समायोजन पर विशेष बल देते रहते हैं। एक बालक जिस परिवेश में पलता-बढ़ता है, उसकी शिक्षा-दीक्षा होती है, वही तो उसके संस्कार माने जाते है। संस्कार रूपी धरा को सींचने का काम केवल उस बालक द्वारा व्यक्ति बनकर किया जाता है। यही संस्कार नवसृजित होकर आधुनिकता का रूप ले लेते है। गोविन्द मिश्र ने इस आधुनिक वर्ग की भाषा उसके संस्कार रहित जीवन की अनोखी दास्तां लिखी है-

''लोगों में कैसे एक-दूसरे के लिए प्रेम खत्म हो गया है पहले घर के बाहर मोहल्ला-पड़ोस के लिए भी प्रेम था, सबके सुख-दुख में शरीक होने का स्वभाव था, अब अपने बीवी-बच्चों के बाहर प्रेम महसूस ही नहीं किया जाता, सिर्फ औपचारिकताएँ निभाई जाती हैं। सिर्फ अपना-अपना ख्याल। पहले खुशी देने में थी, अब लेने पाने हथियाने में ढूँढ़ी जाती है। जीवन अपनी लीक पर चलने की बजाय दूसरों की नकल हो गया है"।

निष्कर्ष:

इस प्रकार सारांश रूप में हम कह सकते है कि गोविन्द मिश्रजी के कथा साहित्य में सांस्कृतिक चेतना की सशक्त अभिव्यक्ति हुई है। इन्होनें अपने लेखन में 'मानवीयता' को सर्वोच्चता प्रदान की है। एक व्यक्ति अपने समय, समाज को नहीं बदल सकता। गोविन्द मिश्रजी ने इसी मानवीय भावना को अपने वक्तव्य में इस प्रकार कहा - '' मैं इतना तो कर सकता हूं कि जो लोग मेरे पास या दूर.... पृथ्वी पर इस वक्त चल रहे हैं - मैरे सहयात्री ,उनके दुःखों में हिस्सेदारी करता चलू ; वह लिखूं ,जो मुझे और उन्हें यह समय, यह जीवन झेलने की ताकत दे... कम से कम इतनी कि हमारा जीवन में, मनूष्य में विश्वास सब बना रहे!''

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. संपा.चन्द्रकान्त बांदिवडेकर - गोविन्द मिश्र: सृजन के आयाम, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली संस्करण , 2007. पृ.सं207
2. गोविन्द मिश्र - पाँच आँगनों वाला घर, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2008,पृ. सं. 20
3. गोविन्द मिश्र - पाँच आँगनों वाला घर, वही - पृ. सं. 90
4. शशिकला राय - अक्षर पत्रिका, नई दिल्ली, संस्करण, 2010, पृ. सं. 82
5. गोविन्द मिश्र - पाँच आँगनों वाला घर, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2008,पृ. सं. 94
6. संपा.चन्द्रकान्त बांदिवडेकर - गोविन्द मिश्र: सृजन के आयाम, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण , 2007. पृ. 82
7. हिन्दुस्तान न्यूज पेपर, गोविन्द मिश्र का वक्तव्य, रविवार 05 अक्टूबर 2014 पृ .09
8. संपा.चन्द्रकान्त बांदिवडेकर - गोविन्द मिश्र: सृजन के आयाम, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण , 2007. पृ.171
9. गोविन्द मिश्र - लाल पीली जमीन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2003,पृ. सं. 250